सराय
अनुवाद
श्रृंखला

बेतिलिस्म रात

रोशनी का आधुनिक सफ़र

वुल्फ़गैंग शिवेलबुश

अनुवाद
योगेन्द्र दत्त

वाणी प्रकाशन

वुल्फ़गैंग शिवेलबुश कृत

बेतिलिस्म रात: रोशनी का आधुनिक सफ़र

(सराय अनुवाद शृंखला की दूसरी पेशकश)

(मूल जर्मन से ऐन्जेला डेवीस द्वारा किये गये अंग्रेज़ी अनुवाद *Disenchanted Night : The Industrialization of Light in the Nineteenth Century*, University of California Press, Berkeley and Los Angeles, California, 1995 का हिन्दी संस्करण)

परिकल्पना और प्रस्तुति : सराय-सीएसडीएस
अनुवाद : योगेन्द्र दत्त
शृंखला संपादन : रविकान्त
इस किताब के संपादक : रविकान्त + संजय शर्मा
पुस्तक सज्जा और आवरण : मृत्युंजय चैटर्जी
संपादन सहयोग : महमूद फ़ारूक़ी, राकेश कुमार सिंह
लिप्यंतरण सहयोग : प्रीतू झा (फ्रांसीसी), ईषा (जर्मन)
कॉपी: रमज़ान अली, अरुण माहेश्वरी, विनोद भारद्वाज, गणेश रजवार
उत्पादन सहयोग : आशीष महाजन, सचिन, विकास, चन्दन
विशेष आभार : राधिका सुब्रमण्यम, शाश्वती मजुमदार, रवि वासुदेवन, रवि सुंदरम, जीबेश बागची, मॉनिका नरूला, शुद्धब्रत सेनगुप्ता, अवधेन्द्र शरण

प्रकाशक :
सराय
विकासशील समाज अध्ययन पीठ (सीएसडीएस) का कार्यक्रम
29, राजपुर रोड, दिल्ली—110054, भारत
फ़ोनः (+91) 11-23942199, फ़ैक्सः (+91) 11-23943450
ई-मेलः dak@sarai.net, वेबसाइटः www.sarai.net

वाणी प्रकाशन
21 ए, दरियागंज, नई दिल्ली - 110 002

इस किताब के किसी भी हिस्से के शैक्षिक और ग़ैर-व्यावसायिक इस्तेमाल के लिए प्रकाशक से इजाज़त लेने की ज़रूरत नहीं है. अलबत्ता लेखकों और प्रकाशकों को इत्तला कर दें तो उन्हें बेहद ख़ुशी होगी.

ISBN : 978-93-5000-254-4

मुद्रक : आर.टेक ऑफसेट, दिल्ली-110095

मूल्य : २५०.००

आवरण : विन्सेन्ट वैन गॉग, कैफ़े टेरेस ऐट नाइट

ये किताब सराय के वेबसाइट पर मुफ़्त डाउनलोड के लिए उपलब्ध रहेगी।

अनुक्रम

भूमिका के बदले	**iv**
लैम्प	**1**
आग और लौ	4
अरगाँ (Argand) : बत्ती का आधुनिकीकरण	8
गैसबत्ती	11
बिजली की ताजपोशी	39
सड़क	**61**
रोशनी की बाढ़	88
रात	**103**
हाट झरोखा (Shop Windows)	108
बैठक (ड्रॉइंग रूम)	**117**
मंच	**141**
अंधकारमय प्रेक्षागृह	152

भूमिका के बदले

मशाल—ज्योति का प्रतीक.

—वह ज्योति जो हमारी मुट्ठी में हो!

हाँ, मशाल मनुष्य की उस विजय की सूचना है, जब उसने पंच-प्रकृतियों—क्षिति, जल, पावक, गगन, समीर—में सबसे भयानक पावक, अग्नि—पर क़ब्ज़ा किया, उसे मुट्ठी में लिया और विधाता को चुनौती दी!

विधाता को—चुनौती!

लो, ओ विधाता, दिन बनाकर तुम्हें सन्तोष नही हुआ, तो तुमने रात बनाई—प्रकाश तुम्हारे लिए काफ़ी नही था, तुमने अंधकार बनाया। अंधकार बनाया और हमें उसमें भटकने, तड़पने, बिलबिलाने, चिल्लाने को छोड़ दिया। हम चिल्लाते रहे—तमसो मा ज्योतिर्गमय! और तुम — तुम कभी तारे की झिल-मिल, चाँद की चकमक, बिजली की लुक-छिप और जुगनू की भुक-भुक के बहाने हम पर मुस्कराते रहे, हँसते रहे! ओहो, ठहाके मारते रहे! किन्तु अब? अब हमारे हाथ में यह मशाल—यह ज्योतिर्लिंग—है, अब? बोलो, लजाते क्यों हो! बुड्ढे!

नही बोलते, तो सुनो—

अब, हम इस ज्योतिर्पुंज को हाथ में लेकर तुम्हारी अंजनबसना कुहू निशा में भी अपना रास रचाएँगे.

तुम्हारे अंधकार की सेना हमारे इस प्रकाशपुंज को देखते ही इस तरह पलायित होगी, जिस तरह शिकरे के पर की फटफटाहट सुनते ही पक्षी समूह!

यही नही, जहाँ तुम्हारे तारे, बिजली, जुगनू की कौन बात, बारह कला चाँद और सोलह कला सूरज—वह जिसे भुवनभास्कर कहलाने का घमंड है—हार मानेगा, व्यर्थ सिद्ध होगा, वहाँ भी हमारा मशाल जगमग करेगा, ज्योति का बाज़ार लगाएगा! हम इसे अपने हाथ में लेकर भयंकर भूधर की तमिस्रामयी हृदय-स्थली—भयंकर गुफ़ा—में ही प्रवेश नही करेंगे, पृथ्वी की छाती फोड़कर उसकी धुकधुकी की भी गिनती करेंगे!

धन्य है हमारी मशाल—धन्य हैं हम, इसके स्रष्टा.

मशाल—ज्योति का प्रतीक.

गैस और विद्युत की दुनिया में रहने, रमनेवालों! ज़रा अपनी कल्पना को पीछे ले जाओ, तब तुम्हें मशाल का महत्व मालूम पड़े!

('मशाल' — रामवृक्ष बेनीपुरी)

बेनीपुरी ने यह शब्द चित्र 1949 में खींचा था, शिवेलबुश की मूल जर्मन किताब 1989 में आई. बेनीपुरी ने इसे अपनी अनोखी ललित निबंध शैली में लिखा था और शिवेलबुश ने लिखी इतिहास की

एक मुकम्मल किताब. जिस समय-बिंदु से बेनीपुरी पीछे जाते हैं, शिवेलबुश वहीं से आगे बढ़ते हैं. 'मशाल' जहाँ एक समाजवादी क्रांति का प्रतीकात्मक आह्वान है, वहीं *बेतिलिस्म रात* आधुनिक, 'नक़ली' रोशनी का एक सामाजिक सफ़रनामा, जिसमें दीये से लेकर डायोरामा तक के तकनीकी बदलाव की वैज्ञानिक कहानी तो है ही, पर किस बदलाव से घर, शहर, सत्ता और समाज पर क्या फ़र्क़ पड़ता है, किस बदलाव पर वे कैसे चमत्कृत होते हैं, किस पसोपेश में पड़ते हैं, और आख़िरकार उनके साथ वे कैसे खिलवाड़ करते हैं, कैसा रोज़ाना का सलूक करते हैं, ख़ास मौक़ों पर उनका कैसा इस्तेमाल करते हैं, इसका बयान भी है. किस तरह की रोशनी कब, किस लड़ाई में, किसका हथियार बनती है, और कब प्रतीक, कब मंच सजाती है और कब नेपथ्य में चली जाती है, ये सब है इस किताब में. लब्बोलुबाब ये कि हर अच्छे इतिहास की तरह ये एक साथ आर्थिक, तकनीकी, सांस्कृतिक और मनोवैज्ञानिक दास्तान है. उन्नीसवीं सदी के युरोपीय साहित्य के उद्धरण और अभिलेखागार के दस्तावेज़ों के साक्ष्य के अलावा अनेकानेक दिलकश तस्वीरें इस लोकप्रिय किताब को स्थायी तौर पर अमूल्य बनाती हैं.

दोस्तो! हमने खुद से और हिंदी जनपद से वादा किया था कि तकनीकी इतिहास के सामाजिक व सांस्कृतिक पहलुओं से मुताल्लिक़ कुछ ऐसी किताबें छापेंगे जो हममें बौद्धिक स्फुरण पैदा करती रही हैं. आधुनिकता, ख़ासकर युरोप की औद्योगिक आधुनिकता पर वुल्फ़गैंग शिवेलबुश की दो बेहतरीन किताबें हमारे उसी मंसूबे का हिस्सा हैं. पिछली सर्दियों में ज़ाक रॉसिएर की *सर्वहारा रातें* (अनुवाद : अभय कुमार दुबे, वाणी प्रकाशन, 2009) के बाद *बेतिलिस्म रात* को दिन का उजाला दिखाकर हम उस वादे को आंशिक तौर पर आज पूरा कर रहे हैं. योगेन्द्र दत्त ने उनकी दूसरी किताब *रेलवे जर्नी* का भी अनुवाद कर छोड़ा है. हम इसे भी जल्द से जल्द सम्पादित करके शाया करेंगे. दिल्ली विश्वविद्यालय और दीगर जगहों पर इतिहास पढ़ते-पढ़ाते हमें ऐसी किताबों की कमी खलती रही है, लिहाज़ा ऐसी कोशिशों से हमारी उम्मीद ये भी रहती है कि हिंदी और दूसरी महादेशीय भाषाओं में इस तर्ज़ पर और शायद इससे बेहतर इतिहास लिखे जायेंगे. और ये भी कि ये किताबें इतिहासेतर व्यापकतर पाठक समुदाय तक पहुँचेंगी.

बहरहाल, ऐसे इतिहास हमारे यहाँ चाहे जितने विरल रहे हों, पर उनको लिखने के लिए दिलचस्प स्रोतों की कोई कमी नहीं है. मिसाल के तौर पर, कुदरती रोशनी या कृत्रिम रोशनी की प्रौद्योगिकी के साथ एशियाई मुठभेड़ की दास्तानों से हमारा काव्य अटा पड़ा है. चाहे आप बेनीपुरी की तरह आधुनिकता से आड़ा-तिरछा रिश्ता बनाने वाले अकबर इलाहाबादी के ये सार-गर्भित शे'र देखें :

बर्क़ के लैम्प से आँखों को बचाए अल्लाह।
रोशनी आती है और नूर चला जाता है।।

चाहे राही मासूम रज़ा की *क्रांति-कथा* देखें या फणीश्वर नाथ रेणु की कहानी *पंचलाइट* को, आपको ऐसे कई दृष्टान्त मिल जायेंगे, जो अपने ज़माने की रोशनी या उसकी कमी, उसको लेकर होते संघर्षों, या फिर उसकी बहुतायत से चुँधियाते समाज से मुखामुखम हो रहे हैं:

भारत धूलों से भरा, आँसुओं से गीला, भारत अब भी व्याकुल विपत्ति के घेरे में।
दिल्ली में तो है खूब ज्योति की चहल-पहल, पर, भटक रहा है सारा देश अँधेरे में।

(दिनकर, 'भारत का यह रेशमी नगर')

कहाँ तो तय था चिराग़ाँ हरेक घर के लिए।
कहाँ चिराग़ मयस्सर नहीं शहर के लिए।।
शाम ही से बुझा सा रहता है।
दिल हो गोया चराग़ मुफ़लिस का।।

कहना ना होगा कि उर्दू शायरी की महफ़िलें, उसके मुशायरे, शमा-ए-महफ़िल के बग़ैर जम ही नहीं सकती थीं और न ही कोई रूमानी शायरी आफ़ताब-महताब के बिना मुमकिन थी। इस रिवायत को फ़िल्मी गीतों ने भी बदस्तूर क़ायम रखा। श्वेत-श्याम के किरियास्कुरो — कहीं दीप जले कहीं दिल — से लेकर रंगीन *लव-स्टोरी* तकः

अब चराग़ों का कोई काम नहीं।
तेरे चेहरे से रोशनी-सी है।।

या फिर

बिजली नहीं है यही इक ग़म है।
तेरी बिंदिया क्या बिजली से कम है।।

पीछे जाकर संस्कृत ग्रंथों को पलटें तो, और सौर ऊर्जा में दिलचस्पी रखने वालों को शायद यह बात ख़ास दिलचस्प लगेगी कि वहाँ दीये को सूर्य का ही अंश माना गया है, वैसे तो उसे ब्रह्म भी माना गया है — यो दीप ब्रह्मस्वरूपस्त्वम् — पर हमारे पास अभी उधर भटकने का अवकाश नहीं है.

महाकवि कालिदास के कई विशेषणों में से एक है 'दीपशिखा'। दीपशिखा कवि, क्यों हुए कालिदास, यूँ हुएः

संचारिणी दीपशिखेव रात्रौ, यं यं व्यतीयाय पतिंवरा सा।
नरेंद्र मार्गाट्ट इव प्रपेदे विवर्णभावः स स भूमिपालः।।

(*रघुवंशम्* , छठा सर्ग)

प्रसंग इन्दुमती स्वयंवर का है और वह वर-माला लेकर लाइन से बैठे राजाओं के आगे से गुज़र रही है। उसका आगे बढ़ना राजाओं पर क्या असर छोड़ता है, इसे समझाने के लिए कालिदास ने राजमार्ग पर रात को चलते मशालची की उपमा दी है। मशाल दीवार के जिस हिस्से के सामने पड़ती है वह हिस्सा अचानक चमक उठता है, फिर जैसे ही मशाल आगे बढ़ती है दीवार विवर्ण — फीकी — हो जाती है.

रामचरितमानस में जब जंगल जाने की बात आती है तो सीता की कोमलता और वन-जीवन की कठोरता कौशल्या के ज़ेहन में एक साथ कौंध जाती है — दीपबाती नहीं टारन कहऊँ — जिससे आजतक दीये की लौ को भी दुरुस्त करने नहीं कहा, वह वनवास करेगी?

उसी तरह, कौन भूल सकता है *शोले* के उस रूमानी दृश्य को जब विधवा जया भादुड़ी लालटेनों को एक-एक कर बुझाती है, अमिताभ माउथ ऑरगन बजाते हुए उन्हें बुझता हुआ देखता है, और फिर आख़िरी लालटेन के बुझने के साथ चुप हो जाता है. इस तरह संगीत और दीया ख़ामोश मोहब्बत में आपसी संवाद का ज़रिया बनते हैं.

कितनी मिसालें दी जायें! कितनी सूक्तियाँ, कितने मुहावरे, कितनी लोकोक्तियाँ होंगी हमारे इर्द-गिर्द बिखरी हुईं, जिन्हें अपने शिवेलबुश का इंतज़ार है, इतिहास की रोशनाई का इंतज़ार है. इत्यलम.

रविकान्त + संजय शर्मा